रात के दस बजे होंगे। श्मशान के एक ओर डोम ने बेफिक्री से खाट बिछाते हुए कबीर के दोहे की ऊँची तान छेड़ दी, 'जेहि घट प्रेम न संचरै, सोई घट जान मसान!'

श्मशान का दिल-भर आया। एक सर्द आह भरकर उसने पहलू में खड़ी पहाड़ी से कहा, 'मैं इंसान को जितना प्यार करता हूँ, उतनी ही घृणा उससे पाता हूँ। सभी मनुष्य यही चाहते हैं कि कभी उन्हें मेरा मुँह न देखना पड़े। पर वास्तव में मैं इतना बुरा नहीं हूँ। संसार में जब मनुष्य को एक दिन के लिए भी स्थान नहीं रह जाता, तब मैं उसे अपनी गोद में स्थान देता हूँ। चाहे कोई अमीर हो या गरीब, वृद्ध हो या बालक, मैं सबको समान दृष्टि से देखता हूँ। पर इससे क्या होता है? मेरे पास वह प्रेम नहीं, जो मनुष्य की सबसे बड़ी निधि है। मेरे दिल में मुहब्बत का वह चिराग रोशन नहीं होता, जिसके बल पर मैं उसके दिल में अपने लिए थोड़ा-सा स्थान बना सकता। नहीं जानता खुदा ने मेरे साथ ऐसी बेइंसाफी का सलूक क्यों किया?'

शहर और श्मशान के बीच खड़ी पहाड़ी मुस्करा दी। उसकी यह व्यंग्यात्मक मुस्कुराहट श्मशान के हृदय में चुभ गई। उसने पूछा, 'क्या तुम्हारी कभी यह इच्छा नहीं होती कि तुम्हारे पास भी इंसान की तरह प्रेम-भरा दिल होता, जिसमें अपने प्रिय के लिए मर मिटने की तमन्ना मचलती रहती है। कभी-कभी दूर-दूर से हवाएँ आती हैं और लैला-मजनूँ और शीरी-फरहाद की प्रेम-कहानियाँ मुझे सुना जाती हैं तो सच मानना, मैं तड़पकर रह जाता हूँ कि काश! मैं भी मजनूँ होता और लैला के वियोग में अपने को कुर्बान कर देता। प्रिय की प्रतीक्षा में, राह में पलकों के पाँवड़े बिछाकर बैठा रहता। सावन की उठी घटाएँ मेरे मन में हूक उठातीं और बसंत की सुरमई साँझें मेरे मन में तड़प बनकर रह जातीं। प्रिय का जीवन ही मेरा जीवन होता और उसकी मौत मेरी मौत। पर क्या करूँ, ईश्वर ने तो मुझे श्मशान बनाया है, जिसके हृदय में प्रेम नहीं, स्निग्धता नहीं, सरसता नहीं, केवल धू-धू करती आग की लपटें हैं।'

एक आँख से श्मशान को और दूसरी आँख से शहर को और उसमें बसे इंसानों को देखने वाली पहाड़ी ने पूछा, 'बड़ी तमन्ना है इंसान बनने की?'

श्मशान ने कहा, 'तमन्ना! मनुष्य के पास जैसा प्रेममय हृदय है,

उसे पाने के लिए मैं अपने जैसे सौ जीवन भी कुर्बान कर सकता हूँ।'

पहाड़ी मुस्करा दी।

इतने में ही किसी के करुण क्रंदन ने श्मशान के शुष्क हृदय को दहला दिया। एक छोटी-सी भीड़ किसी शव को लिए चली आ रही थी। उसमें एक सुंदर नवयुवक फूट-फूटकर रो रहा था, मानो किसी ने उसका सर्वस्व लूट लिया हो। लाश उतारी गई। वह उस नवयुवक की पत्नी थी। युवक का क्रंदन श्मशान के हृदय को बेध गया।

सारा क्रिया-कर्म समाप्त कर जैसे-तैसे उस युवक को सँभालकर वे लोग ले गए और श्मशान सोचता रहा, कितना प्यार करता होगा यह अपनी पत्नी को। काश, मैं भी किसी को इतना प्यार कर सकता!

दूसरे दिन साँझ के धुँधले प्रकाश में श्मशान ने देखा, वही युवक आ रहा है। उसके कल और आज के चेहरे में ज़मीन-आसमान का अंतर था। एक रात में ही जैसे वह बूढ़ा हो गया था। आँखें सूजकर लाल हो गई थीं। वह पागलों की तरह लड़खडाता हुआ आया और अपनी पत्नी की राख बटोरने लगा। कुछ देर तक हिचकियाँ लेता रहा और उसकी आँखों से निरंतर अश्रु बहते रहे। फिर जैसे भावनाओं का बाँध टूट गया, वह सिर फोड़-फोड़कर रोने लगा और चीखने लगा – 'तुम मुझे छोड़कर कहाँ चली गई सुकेशी? याद है, कितनी बार तुमने कसमें खाई थीं कि जिंदगी भर तुम मेरा साथ दोगी पर दो वर्षों में ही तुम तो मुझे अकेला छोड़कर चली गईं। अब मैं तुम्हारे बिना जीवित नहीं रह सकता। तुम मुझे अपने पास बुला लो, नहीं तो मुझे ही तुम्हारे पास आने का कोई उपाय करना पड़ेगा। तुम नहीं तो मेरे जीवन का कोई अर्थ नहीं, कोई सार नहीं, कोई रस नहीं। तुम्हीं तो मेरा जीवन थीं, मेरी प्रेरणा थीं। अब मैं जीवित रहकर करूँगा ही क्या? मुझे अपने पास बुला लो, मैं तुम्हारे बिना नहीं रह सकता, नहीं रह सकता, किसी तरह भी नहीं रह सकता। इसी प्रकार वह विलाप करके रोता रहा, सिर फोड़ता रहा और मूक श्मशान अपनी सूखी, पथराई आँखों से इस दृश्य को देखता रहा। इंसान बनने की, प्रेम करने की और अपने प्रिय के वियोग में इस नवयुवक की भाँति मर-मिटने की तमन्ना और अधिक ज़ोर पकड़ती रही। वह यही सोचता रहा, काश! मैं भी किसी को इसी तरह दिलोजान से प्यार कर सकता !

उसके पहलू में खड़ी पहाड़ी मुस्कराती रही।

रो-धोकर वह व्यक्ति तो चला गया, पर श्मशान के हृदय को उसके आँसू गर्म सलाखों की तरह दग्ध करते रहे। उसने पहाड़ी से कहा, 'इस व्यक्ति की व्यथा ने मेरे हृदय को मथ डाला। यों तो यहाँ रोज़ ही ऐसे कितने ही व्यक्ति आते हैं, पर जाने क्यों, इसके दु:ख में, इसकी वेदना में ऐसा क्या था, जो मैं कभी नहीं भूल सकूँगा। तुम देखना, अब यह जीवित नहीं रहेगा। एक दिन में ही अपनी प्रेयसी के वियोग में जिसने अपने शरीर को आधा बना डाला हो, वह भला कितने दिन इस प्रकार जीवित रह सकेगा? वह अवश्य ही रो-रोकर प्राण दे देगा, और मैं भी चाहता हूँ कि वह मेरी गोद में आ जाए और मैं दोनों को हमेशा के लिए मिला दूँ!'

सारे दिन वह युवक के शव की प्रतीक्षा करता रहा, पर शव न आया। हाँ, आसमान में जब साँझ का धुँधलका छाने लगा तो वह युवक आया और वैसे ही पागलों की तरह प्रलाप करता रहा। तीन चार दिन तक यह क्रम बना रहा फिर युवक का आना भी बंद हो गया। पर श्मशान उसे न भूल सका। प्रत्येक शव को वह जाने किस उत्सुकता से देखता, और फिर कुछ खिन्न हो जाता।

एक दिन उसने पहाड़ी से पूछा, 'तुम्हें तो शहर का कोना-कोना दिखाई देता है, बता सकती हो, उस युवक का क्या हाल है?'

पहाड़ी ने मुस्कराते हुए कहा, 'नहीं।'

श्मशान ने कहा, 'मेरा अंत:करण रह-रहकर कह रहा है कि अवश्य ही उसने आत्महत्या कर ली होगी। वह शायद नदी में डूब गया होगा, या किसी ऐसे ही उपाय से उसने अपना अंत कर लिया होगा कि मैं उसकी लाश को भी नहीं पा सका। मेरी कितनी तमन्ना थी कि मैं उसे उसकी प्रिया के पास पहुँचा देता।'

पहाड़ी ने पूछा, 'तुम्हें विश्वास है कि वह मर गया होगा?'

श्मशान खीझ उठा, 'तुम तो बिल्कुल ही पत्थर हो। जिसके हृदय को प्रेम की पीर ने बेध दिया हो, वह कभी जीवित नहीं रह सकता।'

पहाड़ी केवल मुस्करा दी।

दिन आए और चले गए। अपने आँचल में इंसानों को अपने प्रेमियों के वियोग में आँसू बहाते देख श्मशान का मन इंसान के प्रति और अधिक श्रद्धालु होता गया और यह एक क्रम-सा हो गया कि श्मशान इंसान के अलौकिक गुण गाया करता और पहाड़ी मुस्कराया करती।

इसी प्रकार तीन वर्ष बीत गए। तीन वर्ष की लंबी अवधि भी श्मशान के मन से उस सुंदर युवक की व्यथा को न पोंछ सकी। वह अक्सर उसकी बात करता। उसके उन आँसुओं की बात करता, जो उसने अपनी प्रेयसी के वियोग में बहाए थे। उसके उस अनुपम प्रेम की बात करता, जिसने उसे अवश्य ही आत्महत्या के लिए बाध्य कर दिया होगा। उसके उस करुण विलाप की बात करता, जो आज भी उसके हृदय को मथे डाल रहा था।

तभी एक दिन फिर उसका हृदय किसी परिचित स्वर की करुण चीत्कारों से दहल उठा। उसने देखा, वही सुंदर युवक एक छोटी-सी भीड़ के साथ किसी शव को लिए आ रहा है। श्मशान ने सोचा, वह अभी जीवित है। अब इस अभागे पर ईश्वर ने कौन-सा दुख डाला है।

पर वहाँ पर जो बातचीत हो रही थी, उससे यह समझने में देर न लगी कि यह भी उसकी पत्नी ही थी। सब लोग कह रहे थे, 'इसके भाग्य में पत्नी का सुख ही नहीं लिखा है। वर्ना पाँच ही वर्ष में यों दो-दो पत्नियाँ न छोड़ जातीं। अभी बेचारे की उम्र ही क्या है...'

आज भी युवक का क्रंदन अत्यंत करुण था, आज भी उसकी चीत्कारें हृदय को दहला देनेवाली थीं, आज भी उसके आँसू गर्म सलाखों की भाँति हृदय को दहला देने वाले थे। उसके पहले दिन के रूप में और आज के रूप में कोई विशेष अंतर नहीं था। जैसे-तैसे धीरज बँधाकर और पकड़कर लोग उसे ले गए।

श्मशान के मन में वर्षों से मनुष्य के अलौकिक प्रेम की जो धारणा जमी हुई थी, उसको पहली बार हलका-सा धक्का लगा। संध्या समय वह युवक फिर आया और अपनी पत्नी की राख में लोट-लोटकर विलाप करने लगा, 'मैंने स्वप्न में भी नहीं सोचा था कि तुम मुझे इस प्रकार छोड़कर चली जाओगी। यदि मुझे इसी तरह मझधार में छोड़कर जाना था, तो मेरा साथ ही क्यों दिया? अब मैं तुम्हारे बिना कैसे जीवित रहूँगा? तुमने अपनी मधुर मुस्कानों से एक दिन में ही मेरे मन से सुकेशी की व्यथा पोंछ दी थी। मैं मन-प्राण से तुम्हारा हो गया। तुम ही तो मेरा प्राण थीं। अब यह निष्प्राण देह कैसे जीवित रहेगी। कितने दिन जीवित रहेगी? मुझे अपने पास बुला लो, अब मैं इस संसार में नहीं रह सकूँगा। सुकेशी तो मेरी अनुगामिनी थी इसीलिए मुझे उसका अभाव नहीं खटका, पर तुम

तो मेरी सहगामिनी थीं, हम तो दो शरीर एक प्राण थे। जब प्राण ही चले गए तो शरीर का क्या प्रयोजन!'

इसी तरह वह रोज़ आता, घंटों विलाप करता और चला जाता। उसके आँसुओं में कुछ ऐसी शक्ति थी, उसके विलाप में कुछ ऐसी सच्चाई थी कि श्मशान के मन में पहले जो एक हल्की-सी संदेह की रेखा उभर आई थी, वह भी मिट गई।

एक बार फिर श्मशान उसके शव की प्रतीक्षा करने लगा और अधिक दृढ़ विश्वास के साथ कि इस धक्के ने अवश्य ही उसके जीवन का अंत कर दिया होगा। श्मशान बराबर मन में यह साध सँजोए बैठा रहा कि कब वह उस युवक और उसकी पत्नी को अपनी गोद में सदा के लिए मिला दे। ऐसा मिलाप, जिसमें वियोग का भय न हो, बिछुड़ने की आशंका न हो। पर उसका शव न आया। उसके हृदय की लालसा, लालसा बनी रही।

फिर वही ढर्रा चल पड़ा। रोज ही न जाने कितने शव जलते, मनुष्य रोते, श्मशान मनुष्य के अलौकिक प्रेम के गुण गाता और पहाड़ी मुस्कारती। अंतर था तो केवल इतना कि श्मशान के स्वर में कुछ उतार आ गया था और पहाड़ी की मुस्कराहट में व्यंग्य कुछ अधिक स्पष्ट और प्रखर हो गया था।

दो वर्ष भी नहीं बीत पाए होंगे कि श्मशान के कानों में फिर वही परिचित स्वर सुनाई पड़ा और उसके आश्चर्य का ठिकाना नहीं रहा, जब उसने देखा कि वह युवक इस बार अपनी तीसरी पत्नी के शव को जलाने आया है। उसने सोचा, शायद बिना प्रेम के ही उसने मजबूरी में विवाह कर लिया हो। पर उस युवक का विलाप सुना तो वह भ्रम भी जाता रहा। आज भी उसका क्रंदन उतना ही करुण था, आज भी उसकी चीत्कार हृदय को दहला देने वाली थी, आज भी उसके अश्रु गर्म सलाखों की भाँति दग्ध कर देने वाले थे। उसके पहले वाले रूप में और आज के रूप में कोई अंतर न था। उसकी बातें भी वही थीं, केवल इतना अंतर था कि आज उसे अपनी तीसरी पत्नी ही सबसे अधिक गुणी दिखाई दे रही थी। वह दावा कर रहा था कि तीसरी पत्नी से ही उसका सच्चा प्रेम था, पहली दो स्त्रियों का प्रेम बचपना था, नासमझी थी। पहली उसकी अनुगामिनी थी, दूसरी सहगामिनी तो तीसरी अग्रगामिनी थी, उसकी पथ-प्रदर्शिका थी, जिसके

बिना वह एक कदम भी जीवित नहीं रह सकता। वही पुरानी बातें, वही विलाप, वही क्रंदन, मानो इसका भावना के साथ कोई संबंध ही न हो, कंठस्थ पाठ की तरह वह उसे दुहरा रहा हो।

मनुष्य के अलौकिक प्रेम की जिस भावना को श्मशान अपने हृदय में बड़े यत्न से सँजोए बैठा था, उसका वही हृदय इस दृश्य से पत्थर हो गया। वह अवाक्, विमूढ़-सा देखता रहा। उसकी दृष्टि पथराई हुई थी, उसमें एक प्रश्न साकार हो उठा था।

पहाड़ी ने उसकी यह हालत देखी तो तरस खाकर बोली, 'सचमुच तुम मूर्ख हो! इतना भी नहीं समझते कि जो इंसान प्रेम करता है, उसे जीवन भी कम प्यारा नहीं। वह प्रेम की स्मृति, कल्पना और आध्यात्मिक भावना पर ही जिंदा नहीं रहता। जीवन की पूर्णता के लिए वह फिर-फिर प्रेम करता है। जीवित रहने की ललक के चलते ही वह हर वियोग झेल लेता है... व्यथा सह लेता है, क्योंकि सबसे अधिक प्रेम तो मनुष्य अपने आपसे करता है।'

कठिन शब्दार्थ :

हूक = हृदय की पीड़ा, दर्द, वेदना; सुरमई = सुरमें के रंग का; स्निग्धता = शीतलता; तमन्ना = इच्छा; क्रंदन = रोना, विलाप; शुस्क = नीरस, स्नेहरहित; दहलाना = भयभीत करना, डरकर काँपना; दग्ध = पीड़ित, दु:खित; धुँधलका = धुँए के रंग का, अस्पष्ट; अनुगामिनी = आज्ञाकारिणी; सहगामिनी = साथ चलनेवाली; अग्रगामिनी = आगे चलनेवाली; लालसा = चाह, इच्छा; ढर्रा = पथ, मार्ग; अवाक् = निस्तब्ध, मौन; विमूढ़ = अचेत, बेसुध; स्मृति = स्मरण, याद।

I) एक शब्द या वाक्यांश या वाक्य में उत्तर लिखिए :

१) श्मशान मनुष्य से प्यार के बदले क्या पाता है?

२) श्मशान किससे बातें कर रहा है?

३) युवक की पहली पत्नी का नाम लिखिए।

४) श्मशान सारे दिन किसके शव की प्रतीक्षा करता रहा?

५) श्मशान के मन में वर्षों से किसके प्रेम की अलौकिक धारणा जमी हुई थी?
६) पाँच वर्ष में युवक की कितनी पत्नियाँ मर गईं?
७) मनुष्य सबसे अधिक प्रेम किससे करता है?
८) 'श्मशान' कहानी की लेखिका कौन हैं?

II) निम्नलिखित प्रश्नों के उत्तर लिखिए :

१) श्मशान ने आह भरकर पहाड़ी से क्या कहा?
२) मनुष्य के प्रेम के बारे में श्मशान के विचार प्रकट कीजिए।
३) पहली पत्नी की मृत्यु पर युवक किस प्रकार विलाप करने लगा?
४) युवक अपनी तीसरी पत्नी की मृत्यु के उपरांत उसे सबसे अधिक गुणी क्यों समझता है?
५) अंतत: पहाड़ी ने तरस खाकर श्मशान से क्या कहा?

* * * * * *

३. खून का रिश्ता

– भीष्म साहनी

लेखक परिचय :

हिन्दी साहित्याकाश में भीष्म साहनी का नाम बड़े आदर से लिया जाता है। आपका जन्म ८ अगस्त १९१५ ई. को रावलपिंडी में हुआ। आपके पिता का नाम हरवंशलाल था। आपने मास्को के विदेशी भाषा प्रकाशन गृह में सन् १९५७ से १९६३ तक अनुवादक के रूप में काम किया। आप दिल्ली कालेज में अंग्रेजी के वरिष्ठ प्रवक्ता के पद पर कार्यरत रहे। आपकी विचारदृष्टि राष्ट्रीय और समाजपरक थी। आपने अपनी कहानियों में निम्न मध्यवर्गीय परिवारों की कुण्ठाओं, निराशा, घुटन, असंगतियों का स्वाभाविक तथा प्रभावशाली चित्रण प्रस्तुत किया है। आपकी सामाजिक दृष्टि स्वस्थ तथा स्पष्ट है। आपकी मृत्यु ११ जुलाई २००३ ई. को हुई।

आपकी प्रसिद्ध कहानियों में – 'माता-विमाता', 'बीवर', 'सिर का सदका', 'प्रोफेसर', 'अपने - अपने बच्चे', 'खून का रिश्ता', 'चीफ की दावत' आदि शामिल हैं। 'तमस' आपका बहुचर्चित उपन्यास है।

प्रस्तुत कहानी में भीष्म साहनी ने सगाई की रस्म, रिश्तेदारों की अहमियत, वीरजी का सवा रुपए में ही सगाई पर बल देना, मंगलसेन को अपनी हैसियत पर नाज़ होना, मंगलसेन को अंततः सगाई में ले जाना, उनका आतिथ्य-सत्कार, एक चम्मच का खो जाना, वीरजी का क्रोध प्रकट करना, मंगलसेन के साथ दुर्व्यवहार, प्रभा के भाई द्वारा चम्मच का वापस ला कर देना आदि घटनाओं का सजीव चित्रण प्रस्तुत किया है। वर्तमान परिवेश में यह कहानी अत्यंत प्रासंगिक है और कहानी तत्वों पर भी यह खरी उतरती है।

आज के चकाचौंध भरे माहौल में सरल विवाह की महत्ता तथा खून के रिश्तों एवं पारिवारिक रिश्तों को निभाने पर बल देने के उद्देश्य से इस कहानी का चयन किया गया है।

खाट की पाटी पर बैठा चाचा मंगलसेन हाथ में चिलम थामे सपने देख रहा था। उसने देखा कि वह समधियों के घर बैठा है और वीरजी की सगाई हो रही है। उसकी पगड़ी पर केसर के छींटे हैं और हाथ में दूध का गिलास है जिसे वह घूँट-घूँट करके पी रहा है। दूध पीते हुए कभी बादाम की गिरी मुँह में जाती है, कभी पिस्ते की। बाबूजी पास खड़े समधियों से उसका परिचय करा रहे हैं। यह मेरा चचाजाद छोटा भाई है, मंगलसेन ! समधी मंगलसेन के चारों ओर घूम रहे हैं। उनमें से एक झुककर बड़े आग्रह से पूछता है – और दूध लाऊँ, चाचाजी? थोड़ा-सा और? अच्छा, ले आओ, आधा गिलास, मंगलसेन कहता है और तर्जनी से गिलास के तल में से शक्कर निकाल-निकालकर चाटने लगता है....

मंगलसेन ने जीभ का चटखारा लिया और सिर हिलाया। तम्बाकू की कड़वाहट से भरे मुँह में भी मिठास आ गयी, मगर स्वप्न भंग हो गया। हल्की-सी झुरझुरी मंगलसेन के सारे बदन में दौड़ गयी और मन सगाई पर जाने के लिए ललक उठा। यह स्वप्नों की बात नहीं थी, आज सचमुच भतीजे की सगाई का दिन था। बस, थोड़ी देर बाद ही सगे सम्बन्धी घर आने लगेंगे, बाजा बजेगा, फिर आगे-आगे बाबूजी, पीछे-पीछे मंगलसेन और घर के अन्य सम्बन्धी, सभी सड़क पर चलते हुए, समधियों के घर जायेंगे।

मंगलसेन के लिए खाट पर बैठना असम्भव हो गया। बदन में खून तो छटाँक-भर था, मगर ऐसा उछलने लगा था कि बैठने नहीं देता था।

ऐन उसी वक्त कोठरी में सन्तू आ पहुँचा और खाट पर बैठकर मंगलसेन के हाथ में से चिलम लेते हुए बोला, ''तुम्हें सगाई पर नहीं ले जायेंगे, चाचा।''

चाचा मंगलसेन के बदन में सिर से पाँव तक लरजिश हुई। पर यह सोचकर कि सन्तू खिलवाड़ कर रहा है, बोला, ''बड़ों के साथ मज़ाक नहीं किया करते, कई बार कहा। मुझे नहीं ले जायेंगे, तो क्या तुम्हें ले जायेंगे?''

''किसी को भी नहीं ले जायेंगे। वीरजी कहते हैं, सगाई डलवाने सिर्फ बाबूजी जायेंगे और कोई नहीं जायेगा।''

''वीरजी आये हैं?'' चाचा मंगलसेन के बदन में फिर लरजिश

हुई और दिल धक-धक करने लगा। सन्तू घर का पुराना नौकर था, क्या मालूम ठीक ही कहता हो।

''ऊपर चलो, सब लोग खाना खा रहे हैं।'' सन्तू ने चिलम के दो कश लगाये, फिर चिलम को ताक पर रखा और बाहर जाने लगा। दरवाजे के पास पहुँचकर उसने फिर एक बार घूमकर हँसते हुए कहा – ''तुम्हें नहीं ले जायेंगे, चाचा, लगा लो शर्त, दो-दो रुपये की शर्त लगती है?''

''बस, बक-बक नहीं कर, जा अपना काम देख!''

ऊपर रसोईघर में सचमुच बहस चल रही थी। सन्तू ने गलत नहीं कहा था। रसोईघर में एक तरफ, दीवार के साथ पीठ लगाये बाबूजी बैठे खाना खा रहे थे। चौके के ऐन बीच में वीरजी और मनोरमा, भाई-बहन, एक साथ, एक ही थाली में खाना खा रहे थे। माँ जी चूल्हे के सामने बैठी पराठे सेंक रही थी। माँ बेटे को समझा रही थी, ''यही मौके, खुशी के होते हैं, बेटा! कोई पैसे का भूखा नहीं होता। अकेले तुम्हारे पिताजी सगाई डलवाने जायेंगे तो समधी भी इसे अपना अपमान समझेंगे।''

''मैंने कह दिया, माँ मेरी सगाई सवा रुपये में होगी और केवल बाबूजी सगाई डलवाने जायेंगे। जो मंजूर नहीं हो तो अभी से...''

''बस-बस, आगे कुछ मत कहना।'' माँ ने झट से टोकते हुए कहा। फिर क्षुब्ध होकर बोली, ''जो तुम्हारे मन में आये करो। आजकल कौन किसकी सुनता है। छोटा-सा परिवार और इसमें भी कभी कोई काम ढंग से नहीं हुआ। मुझे तो पहले ही मालूम था, तुम अपनी करोगे।''

''अपनी क्यों करेगा, मैं कान खींचकर इसे मनवा लूँगा।'' बाबूजी ने बेटे की ओर देखते हुए बड़े दुलार से कहा।

पर वीरजी खीझ उठे, ''क्या आप खुद नहीं कहा करते थे कि ब्याह-शादियों पर पैसे बर्बाद नहीं करना चाहिए। अब अपने बेटे की सगाई का वक्त आया तो सिद्धान्त ताक पर रख दिये। बस, आप अकेले जाइये और सवा रुपया लेकर सगाई डलवा लाइये।''

''वाह जी, मैं क्यों न जाऊँ? आजकल बहनें भी जाती हैं।'' मनोरमा सिर झटककर बोली, ''वीरजी, तुम इस मामले में चुप रहो।''

''सुनो, बेटा, न तुम्हारी बात, न मेरी'', बाबूजी बोले, ''केवल पाँच या सात सम्बन्धी लेकर जायेंगे। कहोगे तो बाजा भी नहीं होगा।

वहाँ उनसे कुछ माँगेंगे भी नहीं। जो समधी ठीक समझें दे दें, हम कुछ नहीं बोलेंगे।''

इस पर वीरजी तुनककर कुछ कहने जा ही रहे थे, जब सीढ़ियों पर मंगलसेन के कदमों की आवाज आयी।

''अच्छा, अभी मंगलसेन से कोई बात नहीं करना। खाना खा लो, फिर बातें होती रहेंगी।'' माँजी ने कहा।

पचास बरस की उम्र के मंगलसेन के बदन के सभी चूल ढीले पड़ गये थे। जब चलता तो उचक-उचककर हिचकोले खाता हुआ और जब सीढ़ियाँ चढ़ता तो पाँव घसीटकर, बार-बार छड़ी ठकोरता हुआ। जब भी वह सड़क पर जा रहा होता, मोड़ पर का साइकिलवाला दूकानदार हमेशा मंगलसेन से मजाक करके कहता, ''आओ, मंगलसेनजी, पेच कस दें'' और जवाब में मंगलसेन हमेशा उसे छड़ी दिखाकर कहता, ''अपने से बड़ों के साथ मजाक नहीं किया करते। तू अपनी हैसियत तो देख!''

मंगलसेन को अपनी हैसियत पर बड़ा नाज था। किसी जमाने में फौज में रह चुका था, इस कारण अब भी सिर पर खाकी पगड़ी पहनता था। खाकी रंग सरकारी रंग है, पटवारी से लेकर बड़े-बड़े इन्स्पेक्टर तक सभी खाकी पगड़ी पहनते हैं। इस पर ऊँचा खानदान और शहर के धनी-मानी भाई के घर में रहना, ऐंठता नहीं तो क्या करता?

दहलीज पर पहुँचकर मंगलसेन ने अन्दर झाँका। खिचड़ी मूँछें सस्ता तम्बाकू पीते रहने के कारण पीली हो रही थी। घनी भौंहों के नीचे दायीं आँख कुछ ज्यादा खुली हुई और बायीं आँख कुछ ज्यादा सिकुड़ी हुई थी। सामने के तीन दाँत गायब थे।

''भौजाईजी, आप रोटियाँ सेंक रही हैं? नौकरों के होते हुए...''

''आओ मंगलसेनजी, आओ, जरा देखो तो यहाँ कौन बैठा है!''

''नमस्ते, चाचाजी!'' वीरजी ने बैठे-बैठे कहा।

''उठकर चाचाजी को पालागन करो, बेटा, तुम्हें इतनी भी अक्ल नहीं है!'' बाबूजी ने बेटे को झिड़ककर कहा। वीरजी उठ खड़े हुए और झुककर चाचाजी को पालागन किया। चाचाजी झेंप गये।

कोने में बैठा सन्तू, जो नल के पास बर्तन मलने लगा था, कन्धे के पीछे मुँह छिपाये हँसने लगा।

''जीते रहो, बड़ी उम्र हो!'' मंगलसेन ने कहा और वीरजी के सिर

पर इस गम्भीरता से हाथ फेरा कि वीरजी के बाल बिखर गये।

मनोरमा खिलखिलाकर हँसने लगी।

''सगाईवाले दिन वीरजी खुद आ गये हैं। वाह-वाह!''

''बैठ जा, बैठ जा, मंगलसेन, बहुत बातें नहीं करते,'' बाबूजी बोले।

''आप मेरी जगह पर बैठ जाइए, चाचाजी, मैं दूसरी चटाई ले लूँगा।'' वीरजी ने कहा।

''दो मिनट खड़ा रहेगा तो मंगलसेन की टाँगें नहीं टूट जायेंगी।'' बाबूजी बोले, ''यह खुद भी चटाई पकड़ सकता है। जाओ मंगलसेन, जरा टाँगें हिलाओ और अपने लिए चटाई उठा लाओ।''

माँजी ने दाँत तले होंठ दबाया और घूर-घूरकर बाबूजी की ओर देखने लगीं, ''नौकरों के सामने तो मंगलसेन के साथ इस तरह रूखाई से नहीं बोलना चाहिए। आखिर तो खून का रिश्ता है, कुछ लिहाज़ करना चाहिए।''

मंगलसेन छज्जे पर से चटाई उठाने गया। दरवाजे के पास पहुँचकर, नौकर की पीठ के पीछे से गुजरने लगा, तो सन्तू ने हँसकर कहा, ''वहाँ नहीं हैं, चाचाजी, मैं देता हूँ, ठहरो। एक ही बर्तन रह गया है, मलकर उठता हूँ।''

सन्तू निश्चिन्त बैठा, कन्धों के बीच सिर झुकाये बर्तन मलता रहा।

मनोरमा घुटनों के ऊपर अपनी ठुड्डी रखे, दोनों हाथों से अपने पैरों की उँगलियाँ मलती हुई, कोई वार्ता सुनाने लगी, ''दूकानदारों की टाँगें कितनी छोटी होती हैं, भैया, क्या तुमने कभी देखा है?'' अपने भाई की ओर कनखियों से देखकर हँसती हुई बोली, ''जितनी देर वे गद्दी पर बैठे रहे, ठीक लगते हैं, पर जब उठें तो सहसा छोटे हो जाते हैं, इतनी छोटी-छोटी टाँगें। आज मैं एक दूकान पर सूटकेस लेने गयी...''

''उठो, सन्तू चटाई ला दो। हर वक्त का मजाक अच्छा नहीं होता।'' चाचा मंगलसेन सन्तू से आग्रह करने लगा।

''वहाँ खड़े क्या कर रहे हो, मंगलसेन? चलो, इधर आओ! उठ सन्तू, चटाई ले आ, सुनता नहीं तू? इसे कोई बात कहो तो कान में दबा जाता है।'' माँ बोली।

सन्तू की पीठ पर चाबुक पड़ी। उसी वक्त उठा और जाकर चटाई ले आया। माँजी ने चूल्हे के पास दीवार के साथ रखी दो थालियों में से एक थाली उठाकर मंगलसेन के सामने रख दी। मैले रूमाल से हाथ पोंछते हुए मंगलसेन चटाई पर बैठ गया। थाली में आज तीन भाजियाँ रखी थीं, चपातियाँ खूब गरम-गरम थीं।

सहसा बाबूजी ने मंगलसेन से पूछा, ''आज रामदास के पास गये थे? किराया दिया उसने या नहीं?''

मंगलसेन खुशी में था। उसी तरह चहककर बोला, ''बाबूजी, वह अफीमची कभी घर पर मिलता है, कभी नहीं। आज घर पर था ही नहीं।''

''एक थप्पड़ मैं तेरे मुँह पर लगाऊँगा, तुमने क्या मुझे बच्चा समझ रखा है?''

रसोईघर में सहसा सन्नाटा छा गया। माँ ने होंठ भींच लिये। मंगलसेन की पुलकन सिहरन में बदल गयी। उसका दायाँ गाल हिलने-सा लगा, जैसे चपट पड़ने पर सचमुच हिलने लगता है।

''छः महिने का किराया उस पर चढ़ गया है, तू करता क्या रहता है?''

नुक्कड़ में बैठे सन्तू के भी हाथ बर्तनों को मलते-मलते रुक गये। भाई-बहन फर्श की ओर देखने लगे। हाय बेचारा, मनोरमा ने मन-ही-मन कहा और अपने पैरों की उँगलियों की ओर देखने लगी। वीरजी का खून खौल उठा। चाचाजी गरीब हैं, इसीलिए इन्हें इतना दुत्कारा जाता है...

''और पराठा डालूँ, मंगलसेनजी?'' माँ ने पूछा। मंगलसेन का कौर अभी गले में ही अटका हुआ था। दोनों हाथों से थाली को ढँकते हुए हडबड़ाकर बोला, ''नहीं, भौजाई जी, बस जी!''

''जब मेरे यहाँ रहते यह हाल है, तो जब मैं कभी बाहर जाऊँगा तो क्या हाल होगा? मैं चाहता हूँ, तू कुछ सीख जाये और किराये का सारा काम सँभाल ले। मगर छः महीने तुझे यहाँ आये हो गये, तूने कुछ नहीं सीखा।''

इस वाक्य को सुनकर मंगलसेन के सर्द लहू में थोड़ी-सी हरारत आयी।

''मैं आज ही किराया ले आऊँगा, बाबूजी! न देगा तो जायेगा कहाँ? मेरा भी नाम मंगलसेन है!''

''मुझे कभी बाहर जाना पड़ा, तो तुम्हीं को काम सँभालना है। नौकर कभी किसी को कमाकर नहीं खिलाते। जमीन-जायदाद का काम करना हो तो सुस्ती से काम नहीं चलता। कुछ हिम्मत से काम लिया करो।''

मंगलसेन के बदन में झुरझुरी हुई। दिल में ऐसा हुलास उठा कि जी चाहा पगड़ी उतारकर बाबूजी के कदमों पर रख दे। हुमककर बोला, ''चिन्ता न करो जी, मेरे होते यहाँ चिड़ी फड़क जाये तो कहना? डर किस बात का? मैंने लाम देखी है, बाबूजी! बसरे की लड़ाई में कप्तान रस्किन था हमारा। कहने लगा, देखो मंगलसेन, हमारी शराब की बोतल लारी में रह गयी है वह हमें चाहिए। उधर मशीनगन चल रही थी। मैंने कहा, अभी लो, साहब! और अकेले मैं वहाँ से बोतल निकाल लाया। ऐसी क्या बात है...''

मंगलसेन फिर चहकने लगा। मनोरमा मुसकरायी और कनखियों से अपने भाई की ओर देखकर धीमे से बोली, ''चाचाजी की दुम फिर हिलने लगी।''

मंगलसेन खाना खा चुका था। उठते हुए हँसकर बोला, ''तो चार बजे चलेंगे न सगाई डलवाने?''

''तू जा, अपना काम देख, जो जरूरत हुई तो तुम्हें बुला लेंगे।'' बाबूजी बोले।

चाचा मंगलसेन का दिल धक-से रह गया। सन्तू शायद ठीक ही कहता था, मुझे नहीं ले चलेंगे। उसे रुलाई-सी आ गयी, मगर फिर चुपचाप उठ खड़ा हुआ, बाहर जाकर जूते पहने, छड़ी उठायी और झूलता हुआ सीढ़ियों की ओर जाने लगा।

वीरजी का चेहरा क्रोध और लज्जा से तमतमा उठा। मनोरमा को डर लगा कि बात और बिगड़ेगी, वीरजी कहीं बाबूजी से न उलझ बैठें। माँजी को भी बुरा लगा। धीमे से कहने लगीं, ''देखो जी, नौकरों के सामने मंगलसेन की इज्जत-आबरू का कुछ तो ख्याल रखा करो। आखिर तो खून का रिश्ता है। कुछ तो मुँह-मुलाहिजा रखना चाहिए। दिन-भर आपका काम करता है।''

''मैंने उसे क्या कहा है,'' बाबूजी ने हैरान होकर पूछा।

''यों रुखाई के साथ नहीं बोलते। वह क्या सोचता होगा? इस तरह बेआबरुई किसी की नहीं करनी चाहिए।''

''क्या बक रही हो? मैंने उसे क्या कहा है?'' बाबूजी बोले फिर सहसा वीरजी की ओर घूरकर कहने लगे, ''अब तू बोल, भाई, क्या कहता है? कोई भी काम ढंग से करने देगा या नहीं?''

''मैंने कह दिया, पिताजी, आप अकेले जाइए और सवा रुपये लेकर सगाई डलवा लाइए।''

रसोईघर में चुप्पी छा गयी। इस समस्या का कोई हल नजर नहीं आ रहा था। वीरजी टस-से-मस नहीं हो रहे थे।

सहसा बाबूजी ने सिर पर की पगड़ी उतारी और सिर आगे को झुकाकर बोले, ''कुछ तो इन सफेद बालों का ख्याल कर। क्यों हमें रुसवा करता है?''

वीरजी गुस्से में थे। चाचा मंगलसेन गरीब है, इसीलिए उसके साथ ऐसा बुरा व्यवहार किया जाता है। यह बात उसे खल रही थी। मगर जब बाबूजी ने पगड़ी उतारकर अपने सफेद बालों की दुहाई दी तो सहम गया। फिर भी साहस करके बोला, ''यदि आप अकेले नहीं जाना चाहते तो चाचाजी को साथ ले जाइए। बस, दो जने चले जायें।''

''कौन-से चाचा को?'' माँजी ने पूछा।

''चाचा मंगलसेन को।''

कोने में बैठे सन्तू ने भी हैरान होकर सिर उठाया। माँ झट से बोली, ''हाय-हाय बेटा, शुभ-शुभ बोलो! अपने रईस भाइयों को छोड़कर इस मरदूद को साथ ले जायें? सारा शहर थू-थू करेगा!''

''माँजी, अभी तो आप कह रही थी, खून का रिश्ता है। किधर गया खून का रिश्ता? चाचाजी गरीब हैं इसीलिए?''

''मैं कब कहती हूँ, यह न जाये! यह भी जाये, लेकिन और सम्बन्धी भी तो जायें। अपने धनी-मानी सम्बन्धियों को छोड़ दें और इस बहुरूपिये को साथ ले जायें, क्या यह अच्छा लगेगा?''

''तो फिर बाबूजी अकेले जायें।'' वीरजी परेशान हो उठे। ''मैंने जो कहना था कह दिया। अब जो तुम्हारे मन में आये करो, मेरा इससे कोई वास्ता नहीं।'' और उठकर रसोईघर से बाहर चले गये।

बेटे के यों उठ जाने से रसोईघर में चुप्पी छा गयी। माँ और बाप दोनों का मन खिन्न हो उठा। ऐसा शुभ दिन हो, बेटा घर पर आये और यों तकरार होने लगे। माँ का दिल टूक-टूक होने लगा। उधर बाबूजी का क्रोध बढ़ रहा था। उनका जी चाहता था कह दें, जा फिर मैं भी नहीं जाऊँगा। भेज दे जिसको भेजना चाहता है। मगर यह वक्त झगड़े को लम्बा करने का न था।

सबसे पहले माँ ने हार मानी, ''क्या बुरा कहता है! आजकल के लड़के माँ-बाप के हजारों रुपये लुटा देते हैं। इसके विचार तो कितने ऊँचे हैं! यह तो सवा रुपये में सगाई करना चाहता है। तुम मंगलसेन को ही अपने साथ ले जाओ। अकेले जाने से तो अच्छा है।''

बाबूजी बड़बड़ाये, बहुत बोले, मगर आखिर चुप हो गये। बच्चों के आगे किस माँ-बाप की चलती है? और चुपचाप उठकर अपने कमरे में जाने लगे।

''जा सन्तू, मंगलसेन को कह, तैयार हो जाये।'' माँजी ने कहा।

मनोरमा चहक उठी और भागी हुई वीरजी को बताने चली गयी कि बाबूजी मान गये हैं।

मंगलसेन को जब मालूम हुआ कि अकेला वही बाबूजी के साथ जायेगा, तो कितनी-ही देर तक वह कोठरी में उचकता और चक्कर लगाता रहा। बदन का छटाँक-भर खून फिर उछलने लगा। जी चाहा कि सन्तू से उसी वक्त शर्त के दो रुपये रखवा ले। क्यों न हो, आखिर मुझसे बड़ा सम्बन्धी है भी कौन, मुझे नहीं ले जायेंगे तो किसे ले जायेंगे? मैं और बाबूजी ही इस घर के कर्ता-धर्ता हैं और कौन है? जितना ही अधिक वह इस बात पर सोचता, उतना ही अधिक उसे अपने बड़प्पन पर विश्वास होने लगता। आखिर उसने कोने में रखी ट्रंकी को खोला और कपड़े बदलने लगा।

घण्टा-भर बाद जब मंगलसेन तैयार होकर आँगन में आया, तो माँजी का दिल बैठ गया – यह सूरत लेकर समधियों के घर जायेगा? मंगलसेन के सिर पर खाकी पगड़ी, नीचे मैली कमीज के ऊपर खाकी फौजी कोट, जिसके धागे निकल रहे थे और नीचे धारीदार पाजामा और मोटे-मोटे काले बूट। माँ को रुलाई आ गयी। पर यह अवसर रोने का नहीं था। अपनी रुलाई को दबाती हुई वह आगे बढ़ आयी।

''मनोरमा, जा भाई की आलमारी में से एक धुला पाजामा निकाल ला।'' फिर बाबूजी के कमरे की ओर मुँह करके बोली, ''सुनते हो जी, अपनी एक पगड़ी इधर भेज देना, मंगलसेन के पास ढंग से पगड़ी नहीं।''

मंगलसेन का कायाकल्प होने लगा। मनोरमा पाजामा ले आयी। सन्तू बूट पालिस करने लगा। आँगन के ऐन बीचोंबीच एक कुरसी पर मंगलसेन को बिठा दिया गया और परिवार के लोग उसके आसपास भाग-दौड़ करने लगे। कहीं से मनोरमा की दो सहेलियाँ भी आ पहुँची थीं। मंगलसेन पहले से भी छोटा लग रहा था। नंगा सिर, दोनों हाथ घुटनों के बीच जोड़े वह आगे की ओर झुककर बैठा था। बार-बार उसे रोमांच हो रहा था...

मंगलसेन का स्वप्न सचमुच साकार हो उठा। समधियों के घर में उसकी वह आवभगत हुई कि देखते बनता था। मंगलसेन आरामकुरसी पर बैठा था और पीछे एक आदमी खड़ा पंखा झल रहा था। समधी आगे-पीछे, हाथ बाँधे घूम रहे थे। एक आदमी ने सचमुच झुककर बड़े आग्रह से कहा, ''और दूध लाऊँ, चाचाजी? थोड़ा-सा और?''

और जवाब में मंगलसेन ने कहा, ''हाँ, आधा गिलास ले आओ।''

समधियों के घर की ऐसी सज-धज कि मंगलसेन दंग रह गया और उसका सिर हवा में तैरने लगा। आवाज ऊँची करके बोला, ''लड़की कुछ पढ़े-लिखी भी है या नहीं? हमारा बेटा तो एम.ए. पास है?''

''जी, आपकी दया से लड़की ने इसी साल बी.ए. पास किया है।''

''घर का काम-धन्धा भी कुछ जानती है या सारा वक्त किताबें ही पढ़ती रहती है?''

''जी, थोडा-बहुत जानती है।''

''थोड़ा-बहुत क्यों?''

आखिर सगाई डलवाने का वक्त आया। समधी बादामों से भरे कितने ही थाल लाकर बाबूजी और मंगलसेन के सामने रखने लगे। बाबूजी ने हाथ बाँध दियें, ''मैं तो केवल एक रुपया और चार आने लूँगा। मेरा इन चीजों में विश्वास नहीं है। हमें अब पुरानी रस्मों को बदलना

चाहिए। आप सलामत रहें, आपका सवा रुपया भी मेरे लिए सवा लाख के बराबर है।''

''आपको किस चीज की कमी है, लालाजी। पर हमारा दिल रखने के लिए ही कुछ स्वीकार कर लीजिए।''

बाबूजी मुस्कराये, ''नहीं महाराज, आप मुझे मजबूर न करें। यह उसूल की बात है। मैं तो सवा रुपया ही लेकर जाऊँगा। आपका सितारा बुलन्द रहे! आपकी बेटी हमारे घर आयेगी, तो साक्षात् लक्ष्मी विराजेगी!''

मंगलसेन के लिए चुप रहना असम्भव हो रहा था। हुमककर बोला, ''एक बार कह जो दिया जी कि हम सवा रुपया ही लेंगे। आप बार-बार तंग क्यों करते हैं?''

बेटी के पिता हँस दिये और पास खड़े अपने किसी सम्बन्धी के कान में बोले, ''लडके के चाचा हैं, दूर के। घर में टिके हुए हैं। लालाजी ने आसरा दे रखा है।''

आखिर समधी अन्दर से एक थाल ले आये, जिस पर लाल रंग का रेशमी रूमाल बिछा था और बाबूजी के सामने रख दिया। बाबूजी ने रूमाल उठाया, तो नीचे चाँदी के थाल में चाँदी की तीन चमचम करती कटोरियाँ रखी थीं, एक में केसर, दूसरी में रांगला धागा, तीसरी में एक चमकता चाँदी का रुपया और चमकती चवन्नी। इसके अलावा तीन कटोरियों में तीन छोटे-छोटे चाँदी के चम्मच रखे थे।

''आपने आखिर अपनी ही बात की,'' बाबूजी ने हँसकर कहा, ''मैं तो केवल सवा रुपया लेने आया था...'' मगर थाल स्वीकार कर लिया और मन-ही-मन कटोरियों, थाल और चम्मचों का मूल्य आँकने लगे।

मनोरमा और उसकी सहेलियाँ छज्जे पर खड़ी थीं जब दोनों भाई सड़क पर आते दिखायी दिये। मंगलसेन के कन्धे पर थाल था, लाल रंग के रूमाल से ढ़ँका हुआ और आगे-आगे बाबूजी चले आ रहे थे।

वीरजी अब भी अपने कमरे में थे और पलंग पर लेटे किसी नावेल के पन्नों में अपने मन को लगाने का विफल प्रयास कर रहे थे। उनका माथा थका हुआ था, मगर हृदय धूमिल भावनाओं से उद्वेलित होने लगा था। क्या प्रभा मेरे लिए भी कोई सन्देश भेजेगी? सवा रुपये में सगाई डलवाने

के बारे में वह क्या सोचती होगी? मन-ही-मन तो जरूर मेरे आदर्शों को सराहती होगी। मैंने एक गरीब आदमी को अपनी सगाई डलवाने के लिए भेजा। इससे अधिक प्रत्यक्ष प्रमाण मेरे आदर्शों का क्या हो सकता है?

''लाख-लाख बधाइयाँ, भौजाईजी!'' घर में कदम रखते ही मंगलसेन ने आवाज लगायी।

मनोरमा और उसकी सहेलियाँ भागती हुई जंगले पर आ गयीं। बाबूजी गम्भीर मुद्रा बनाये, आँगन में आये और छड़ी कोने में रखकर अपने कमरे में चले गये।

मनोरमा भागती हुई नीचे गयी और झपटकर थाल चाचा मंगलसेन के हाथ से छीन लिया।

''कैसी पगली है! दो मिनट इन्तजार नहीं कर सकती।''

''वाह जी, वाह!'' मनोरमा ने हँसकर कहा, ''बाबूजी की पगड़ी पहन ली तो बाबूजी ही बन बैठे हैं! लाइये, मुझे दीजिए। आपका काम पूरा हो गया।''

माँजी की दोनों बहनें जो इस बीच आ गयी थीं, माँजी से गले मिल-मिलकर बधाई देने लगीं। आवाज सुनकर वीरजी भी जंगले पर आ खड़े हुए और नीचे आँगन का दृश्य देखने लगे। थाल पर रखे लाल रूमाल को देखते ही उनका रोम-रोम पुलकित हो उठा। सहसा ही वह ससुराल की चीजों से गहरा लगाव महसूस करने लगे। इस रूमाल को जरूर प्रभा ने अपने हाथ से छुआ होगा। उनका जी चाहा कि रूमाल को हाथ में लेकर चूम लें। इस भेंट को देखकर उनका मन प्रभा से मिलने के लिए बेताब होने लगा।

माँजी ने थाल पर से रूमाल उठाया। चमकती कटोरियाँ, चमकता थाल, बीच में रखे चम्मच। वीरजी को महसूस हुआ, जैसे प्रभा ने अपने गोरे-गोरे हाथों से इन चीजों को करीने से सजाकर रखा होगा।

''पानी पिलाओ, सन्तू'', चाचा मंगलसेन ने आँगन में कुर्सी पर बैठते हुए, टाँग के ऊपर टाँग रखकर, सन्तू को आवाज लगायी।

इतने में माँजी को याद आयी, ''तीन कटोरियाँ और दो चम्मच? यह क्या हिसाब हुआ? क्या तीन चम्मच नहीं दिये समधियों ने?'' फिर बाबूजी के कमरे की ओर मुँह करके बोली, ''अजी सुनते हो! तुम भी कैसे हो, आज के दिन भी कोई अन्दर जा बैठता है?''

''क्या है?'' बाबूजी ने अन्दर से ही पूछा।

''कुछ बताओ तो सही, समधियों ने क्या कुछ दिया है?''

''बस, थाली में जो कुछ है वही दिया है, तेरे बेटे ने मना जो कर दिया था।''

''क्या तीन कटोरियाँ थीं और दो चम्मच थे?''

''नहीं तो, चम्मच भी तीन थे।''

''चम्मच तो यहाँ सिर्फ दो रखे हैं।''

''नहीं-नहीं, ध्यान से देखो, जरूर तीन होंगे। मंगलसेन से पूछो, वही थाल उठाकर लाया था।''

''मंगलसेनजी, तीसरा चम्मच कहाँ है?''

मंगलसेन सन्तू को सगाई का ब्योरा दे रहा था। ''समधी हमारे सामने हाथ बाँधे यों खड़े थे, जैसे नौकर हों। लड़की बड़ी सुशील है, बड़ी सलीके वाली, बी.ए. पास है, सीना-पिरोना भी जानती है...''

''मंगलसेनजी, तीसरा चम्मच कहाँ है?''

''कौन-सा चम्मच? वहीं थाल में होगा।'' मंगलसेन ने लापरवाही से जवाब दिया।

''थाल में तो नहीं है।''

''तो उन्होंने दो ही चम्मच दिये होंगे। बाबूजी ने थाल लिया था।''

''हमें बेवकूफ बना रहे हो, मंगलसेनजी, तुम्हारे भाई कह रहे हैं तीन चम्मच थे!''

इतने में बाबूजी की गरज सुनायी दी, ''इसीलिए मेरे साथ गये थे कि चम्मच गवाँ आओगे? कुछ नहीं तो पाँच-पाँच रुपये का एक-एक चम्मच होगा।''

मंगलसेन ने उसी लापरवाही से कुरसी पर से उठकर कहा, ''मैं अभी जाकर पूछ आता हूँ। इसमें क्या है? हो सकता है, उन्होंने दो ही चम्मच रखे हों।''

''वहाँ कहाँ जाओगे? बताओ चम्मच कहाँ है? सारा वक्त तो थाल पर रूमाल रखा रहा।''

''बाबूजी, थाल तो आपने लिया था, आपने चम्मच गिने नहीं थे?''

''मेरे साथ चालाकी करता है? बदजात! बता तीसरा चम्मच कहाँ है?''

माँजी चम्मच खो जाने पर विचलित हो उठी थीं। बहनों की ओर घूमकर बोलीं, ''गिनी-चुनी तो समधियों ने चीजें दी हैं, उनमें से भी अगर कुछ खो जाय, तो बुरा तो आखिर लगता ही है!''

''कैसा ढीठ आदमी है, सुन रहा है और कुछ बोलता नहीं!'' बाबूजी ने गरजकर कहा।

चम्मच खो जाने पर अचानक वीरजी को बेहद गुस्सा आ गया। प्रभा ने चम्मच भेजा और वह उन तक पहुँचा ही नहीं। प्रभा के प्रेम की पहली निशानी ही खो गयी। वीरजी सहसा आवेश में आ गये। वीरजी ने आव देखा न ताव, मंगलसेन के पास जाकर उसे दोनों कन्धों से पकड़कर झिंझोड़ दिया।

''आपको इसीलिए भेजा था कि आप चीजें गँवा आयें?''

सभी चुप हो गये। सकता-सा छा गया। वीरजी खिन्न-से महसूस करने लगे कि मुझसे यह क्या भूल हो गयी और झेंपकर वापस जाने लगे।

''तुम बीच में मत पड़ो, बेटा! अगर चम्मच खो गया है तो तुम्हारी बला से! सबका धर्म अपने-अपने साथ है। एक चम्मच से कोई अमीर नहीं बन जायेगा।''

''जेब तो देखो इसकी।'' बाबूजी ने गरजकर कहा।

मौसियाँ झेंप गयीं और पीछे हट गयीं। पर मनोरमा से न रहा गया। झट आगे बढ़कर वह जेब देखने लगी। रसोईघर की दहलीज पर सन्तू हाथ में पानी का गिलास उठाये रुक गया और मंगलसेन की ओर देखने लगा। चाचा मंगलसेन खड़ा कभी एक का मुँह देख रहा था, कभी दूसरे का। वह कुछ कहना चाहता था, मगर मुँह से एक शब्द भी नहीं निकल रहा था।

एक जेब में से मैला-सा रूमाल निकला, फिर बीड़ियों की गड्डी, माचिस, छोटा-सा पेन्सिल का टुकड़ा।

''इस जेब में तो नहीं है।'' मनोरमा बोली और दूसरी जेब देखने लगी। मनोरमा एक-एक चीज निकालती और अपनी सहेलियों को दिखा-दिखाकर हँसती।

दायीं जेब में कुछ खनका। मनोरमा चिल्ला उठी, ''कुछ खनका है, इसी जेब में है, चोर पकड़ा गया! तुमने सुना, मालती?''

जेब में टूटा हुआ चाकू रखा था, जो चाबियों के गुच्छे से लगकर खनका था।

''छोड़ दो मनोरमा। जाने दो, सबका धर्म अपने-अपने साथ है। आपसे चम्मच अच्छा नहीं है, मंगलसेनजी, लेकिन यह सगाई की चीज थी।''

मंगलसेन की साँस फूलने लगी और टाँगें काँपने लगीं, लेकिन मुँह से एक शब्द भी नहीं निकल पा रहा था।

''दोनों कान खोलकर सुन ले, मंगलसेन!'' बाबूजी ने गरजकर कहा, ''मैं तेरे से पाँच रुपये चम्मच के ले लूँगा, इसमें मैं कोई लिहाज नहीं करूँगा।''

मंगलसेन खड़े-खड़े गिर पडा।

''बधाई, बहनजी!'' नीचे आँगन में से तीन-चार स्त्रियों की आवाज एक साथ आ गयी।

मंगलसेन गिरा भी अजीब ढंग से। धम्म से जमीन पर जो पड़ा तो उकडूँ हो गया, और पगड़ी उतरकर गले में आ गयी। मनोरमा अपनी हँसी रोके न रोक सकी।

''देखो जी, कुछ तो खयाल करो। गली-मुहल्ला सुनता होगा। इतनी रुखाई से भी कोई बोलता है।'' माँजी ने कहा, फिर घबराकर सन्तू से कहने लगी, ''इधर आओ सन्तू, और इन्हें छज्जे पर लिटा आओ।''

वीरजी फिर खिन्न-सा अनुभव करते हुए अपने कमरे में चले गये। मैंने जल्दबाजी की, मुझे बीच में नहीं पड़ना चाहिए था। इन्होंने चम्मच कहाँ चुराया होगा, जरूर कहीं गिर गया होगा।

बाबूजी नीचे अपने कमरे में चले गये। शीघ्र ही घर में ढोलक बजने की आवाज आने लगी। मनोरमा और उसकी सहेलियाँ आँगन में कालीन बिछवाकर बैठ गयीं। ढोलक की आवाज सुनकर पड़ोसिनें घर में बधाई देने आने लगीं।

ऐन उसी वक्त गलीवाले दरवाजे के पास एक लड़का आ खड़ा हुआ। संकोचवश वह निश्चय नहीं कर पा रहा था कि अन्दर जाये या वहीं खड़ा रहे। मनोरमा ने देखते ही पहचान लिया कि प्रभा का भाई, वीरजी

का साला है। भागी हुई उसके पास जा पहुँची और शरारत से उसके सिर पर हाथ फेरने लगी।

''आओ, बेटाजी, अन्दर आओ, तुम यहाँ पड़ोस में रहते हो न?''

''नहीं, मैं प्रभा का भाई हूँ।''

''मिठाई खाओगे?'' मनोरमा ने फिर शरारत से कहा और हँसने लगी।

लड़का सकुचा गया।

''नहीं, मैं तो यह देने आया हूँ,'' उसने कहा और जाकेट की जेब में से एक चमकता, सफेद चम्मच निकाला और मनोरमा के हाथ में देकर उन्हीं कदमों वापस लौट गया।

''हाय, चम्मच मिल गया! माँजी चम्मच मिल गया!''

पर माँजी सम्बन्धियों से घिरी खड़ी थीं। मनोरमा रुक गयी और माँ से नजरें मिलाने की कोशिश करते हुए, हाथ ऊँचा करके चम्मच हिलाने लगी। चम्मच को कभी नाक पर रखती, कभी हवा में हिलाती, कभी ऊँचा फेंककर हाथ में पकड़ती, मगर माँजी कुछ समझ ही नहीं रही थीं...

छज्जे पर सन्तू ने मंगलसेन को खाट पर लिटाया और मुँह पर पानी का छींटा देते हुए बोला, ''तुम शर्त जीत गये। बस तनख्वाह मिलने पर दो रुपये नकद तुम्हारी हथेली पर रख दूँगा।''

कठिन शब्दार्थ :

खाट = चारपाई; तर्जनी = अँगूठे के पास की उँगली; झुरझुरी = कँपकँपी; लरजिश = काँपना; ताक = आला; तुनकना = रूठना; पालागन = चरण छूना; झेंपना = शरमाना; भींचना = होंठ दबा लेना; नुक्कड़ = मकान, गली आदि का मोड़; दुत्कारना =फटकारना; हुलास = आनंद; रुसवा = रूठना; धूमिल = धुँधलापन; उद्वेलित होना = उत्तेजित होना; जंगला = चौखट; सलीका = अच्छा व्यवहार; विचलित होना = घबरा जाना; झिंझोड़ना = हिलाना; लिहाज़ = इज्ज़त करना।

I) एक शब्द या वाक्यांश या वाक्य में उत्तर लिखिए :

१) चाचा मंगलसेन चिलम थामे क्या देख रहा था?
२) घर का पुराना नौकर कौन था?
३) सन्तू की पीठ पर क्या पड़ी?
४) किसका स्वप्न सचमुच साकार हो उठा?
५) लड़की की पढ़ाई कहाँ तक हुई थी?
६) बाबूजी के सामने कितनी चाँदी की कटोरियाँ रखी हुई थीं?
७) वीरजी की बहन का नाम क्या है?
८) प्रभा की सगाई किनके साथ हुई?
९) एक चम्मच की कीमत कितनी मानी गई?
१०) प्रभा का भाई वीरजी के घर क्या देने आया था?

II) निम्नलिखित प्रश्नों के उत्तर लिखिए :

१) वीरजी के परिवार का संक्षिप्त परिचय दीजिए।
२) मंगलसेन को अपनी हैसियत पर क्यों नाज़ था?
३) संतू का परिचय दीजिए।
४) समधियों के घर मंगलसेन की आवभगत कैसे हुई?
५) बाबूजी सगाई में केवल सवा रुपए ही क्यों लेना चाहते थे?
६) समधी अंदर से थाल में क्या-क्या ले कर आए?
७) चम्मच खो जाने पर वीरजी की क्या प्रतिक्रिया हुई?
८) 'खून का रिश्ता' कहानी के उद्देश्य पर प्रकाश डालिए।

* * * * * *

४. शीत लहर

— डॉ.जयप्रकाश कर्दम

लेखक परिचय :

हिन्दी साहित्य के वर्तमान कथाकारों में डॉ. जयप्रकाश कर्दम का विशेष स्थान है। आपका जन्म ५ जुलाई १९५८ ई. में ग्राम इंदरगढ़ी, गाजियाबाद, उत्तर प्रदेश में हुआ। आप एक प्रतिभासंपन्न दलित साहित्यकार हैं। आपकी साहित्यिक कृतियाँ बहुचर्चित हैं जिनमें 'तलाश' (कहानी संग्रह), 'करुणा', 'छप्पर' (उपन्यास); 'गूँगा नहीं था मैं', 'तिनका-तिनका आग', 'बस्तियों से बाहर' (काव्य संग्रह) आदि प्रमुख हैं।

प्रस्तुत कहानी में शीतलहर के प्रकोप से त्रस्त आश्रयविहीन लोगों का मर्मस्पर्शी चित्रण किया गया है। इसमें एक ओर फटेहाल, नंग-अधनंगे स्त्री-पुरुष और बच्चों के शीतलहर में ठिठुरने का सजीव चित्रण है तो वहीं दूसरी ओर ऐसी मानसिकता वाले लोग हैं जो 'जेन्टरी' की बातें कर चन्द्रप्रकाश को अपने ही फ्लैट में बेघर लोगों को आश्रय देने से मना करते हैं। चन्द्रप्रकाश चाहते हुए भी मन मसोस कर रह जाता है। इस कथा में बेरोजगारी जैसी ज्वलंत समस्या पर भी प्रकाश डाला गया है।

गरीबी और फटेहाली से रात-दिन संघर्ष करते हुए लोगों के प्रति चन्द्रप्रकाश की संवेदना और छात्रों में दयापूर्ण भावना को विकसित करने हेतु इस पाठ का चयन किया गया है।

फ्लैट का कब्जा मिलने के बाद से द्वारका जाना चन्द्रप्रकाश की एक नियमित ड्यूटी सी हो गई थी। प्रत्येक माह कम से कम एक बार वह द्वारका अवश्य जाता था। कभी-कभी जरूरी होने पर एक से अधिक बार भी चला जाता था। उसका फ्लैट एक सोसाइटी में है। फ्लैट खरीदने के लिए उसने बैंक से ऋण लिया था, जिसकी भारी किस्त उसको चुकानी पड़ती थी। एक वेतनभोगी सरकारी अधिकारी होने के कारण वेतन का एक बड़ा हिस्सा बैंक ऋण की किस्त चुकाने में खर्च हो जाने के कारण उसका हाथ तंग रहने लगा था। आर्थिक तंगी से उबरने के लिए वह प्राय: सोचता था कि फ्लैट को किराए पर उठा दे, किन्तु कई कारणों से वह फ्लैट को किराए पर नहीं उठा पा रहा था। इसमें सबसे बड़ा कारण था द्वारका टाऊनशिप में बहुत कम लोगों की रिहाइश। हालाँकि बहुत से जरूरतमंद लोग अपने फ्लैटों में आकर रहने लगे थे। कुछ किराएदार भी आकर रह रहे थे। किन्तु फ्लैटों की संख्या की तुलना में लोगों की रिहाइश बहुत कम थी।

चन्द्रप्रकाश का फ्लैट एक ग्रुप हाऊसिंग सोसाइटी में था। सोसाइटी के अधिकांश सदस्य केन्द्र सरकार के अधिकारी और कर्मचारी थे जिनमें से अधिकांश सरकारी आवासों में रह रहे थे। कुछ के अपने मकान थे। सोसाइटी के बहुत से सदस्य ऐसे भी थे जो सेवानिवृत्त हो चुके थे और सेटेल्ड हो चुके अपने बच्चों के साथ रहते थे। जिन सदस्यों के पास अपना कोई मकान या सरकारी आवास नहीं था केवल वे ही सोसाइटी में रहने के लिए अभी तक आए थे। यही वजह थी कि फ्लैटों का कब्जा लिए एक साल से ऊपर बीत जाने के बाद भी बहुत कम लोग ही सोसाइटी में रहने के लिए आए थे। चन्द्रप्रकाश के पास भी लक्ष्मीबाई नगर में चार कमरों का सरकारी आवास था। लक्ष्मीबाई नगर उसके ऑफिस के बहुत पास और दिल्ली के केंद्र में था। अपना फ्लैट हो जाने के उपरान्त भी इस सरकारी आवास को छोड़कर दिल्ली के एक छोर पर द्वारका में रहने के लिए जाने को वह इच्छुक नहीं था। चन्द्रप्रकाश का पूरा मन था कि सेवा-निवृत्त होने तक वह लक्ष्मीबाई नगर के इस मकान में ही रहेगा। इतने सुविधाजनक स्थान को छोड़कर द्वारका के सूनेपन में जाने का उसे कोई औचित्य दिखाई नहीं देता था। कम-से-कम द्वारका से केंद्रीय सचिवालय तक मैट्रो रेल शुरू होने से पहले वह कतई द्वारका जाने के पक्ष

के पक्ष में नहीं था।

सोसाइटी के अधिकांश फ्लैट खाली पड़े थे। लेकिन, चाहे किसी फ्लैट में कोई रहता हो अथवा खाली पड़ा हो, सोसाइटी सभी फ्लैट मालिकों से प्रतिमाह एक हजार रुपए रख-रखाव का खर्चा लेती थी। चन्द्रप्रकाश को भी हर महीने सोसाइटी को रख-रखाव खर्च देने के लिए द्वारका जाना होता था। जब भी वह सोसाइटी जाता, लगे हाथों चौकीदार से इस बात का जायजा लेना नहीं भूलता था कि सोसाइटी में अब कितने लोग आ गए हैं तथा किराए का क्या रेट चल रहा है। इससे उसको यह जोड़-घटा करने में आसानी हो जाती थी कि यदि फ्लैट किराए पर उठ जाए तो उससे कितने रुपए मासिक की आमदनी शुरू हो जाएगी यानी आर्थिक तंगी से कितनी राहत मिल जाएगी। राहत के बारे में सोचना ही अपने आप में काफी राहत देने वाला होता है। इसलिए जब भी वह सोसाइटी जाता था काफी राहत का अनुभव करता था। शायद यह एक प्रमुख कारण रहा हो कि कभी-कभी रख-रखाव खर्च देने के अलावा भी किसी छुट्टी के दिन वह द्वारका जाकर सोसाइटी हो आता था। जब-जब भी वह सोसाइटी जाता फ्लैट का ताला खोलकर उसे अन्दर से अच्छी तरह देखकर जरूर आता था। इससे उसे अपने अन्दर एक सुख और शकुन का अनुभव होता था। कभी-कभी चन्द्रप्रकाश की पत्नी भी उसके साथ चली जाती थी।

जनवरी का पहला रविवार था। चन्द्रप्रकाश अपनी पत्नी के साथ मारुति कार में बैठ द्वारका जा रहा था। बाहर कड़ाके की ठण्ड थी, साथ में शरीर के भीतर से पार हो जाने वाली तेज हवा चल रही थी। कई दिन से सूरज नहीं निकला था। इससे दिन में तापमान पन्द्रह डिग्री सेल्सियस से ऊपर नहीं जा रहा था। रात में पारा चार डिग्री सेल्सियस तक नीचे जा रहा था। कई साल के बाद दिल्ली में इतनी तेज ठण्ड पड़ी थी। समूचा उत्तरी भारत शीत लहर की चपेट में था। बिना समुचित गर्म कपड़ों के घर से बाहर निकलना मौत को दावत देना था। अनेक लोग इस शीत लहर का शिकार हो चुके थे। अकेले दिल्ली में ही दर्जनों लोगों की मौत हो चुकी थी। शीत लहर के प्रकोप का मुकाबला करने के लिए सरकार ने जहाँ फुटपाथ पर सोने वाले या दूसरे बेघर लोगों के लिए जगह-जगह पर अलाव जलाने की व्यवस्था की थी वहीं कुछ धनी लोगों,

स्वयंसेवी संस्थाओं और राजनेताओं द्वारा बेघर-गरीब लोगों को ऊनी वस्त्र और कम्बल बाँटे जा रहे थे। सरकार द्वारा सभी स्कूलों की छुट्टी कर दी गई थी।

लक्ष्मीबाई नगर से द्वारका तक रास्ते में कई जगहों पर रेड लाइटों, चौराहों, पुलों के पास नंगे-अधनंगे स्त्री-पुरुष और बच्चे शीतलहर से काँपते-ठिठुरते दिखाई दिए। लोगों की यह दयनीय हालत देख चन्द्रप्रकाश का मन द्रवित हो उठा। उसने बराबर की सीट पर बैठी अपनी पत्नी से कहा, 'पूनम, देख रही हो इन लोगों को। इतनी कड़ाके की ठण्ड पड़ रही है और इन लोगों के पास न गर्म कपड़े हैं, न इस शीत लहर से बचने के लिए कोई शेल्टर।'

चन्द्रप्रकाश की पत्नी ने बन्द खिड़की के शीशे के पार उन लोगों की ओर देखा और सहानुभूति के स्वर में बोली, 'सरकार ने खोले तो थे कुछ वर्ष पहले रैन बसेरे। क्या हुआ उन रैन बसेरों का? वे रैन बसेरे ऐसे ही बेघर लोगों के लिए तो थे।'

सरकारी व्यवस्थाएँ कैसी होती हैं तुम जानती तो हो। रैन बसेरों में भी वे ही लोग रात गुजार सकते हैं जो वहाँ के संचालकों को सुविधा शुल्क देने में समर्थ होते हैं। इन लोगों के पास न खाने को है न पहनने को, कहाँ से देंगे ये लोग सुविधा शुल्क। इन लोगों के लिए नहीं हैं ये रैन बसेरे।' कहने के साथ वह एक क्षण रुका और फिर धीरे से बुदबुदाया, 'क्या जिन्दगी है इन लोगों की...।'

'अपनी ऐसी जिन्दगी के लिए ये लोग खुद भी कम जिम्मेदार नहीं हैं। यदि ये लोग मेहनत से कमाएँ तो इस तरह यहाँ फुटपाथ पर भूखे-नंगे क्यों पड़े रहें।' उसकी पत्नी ने अपनी प्रतिक्रिया व्यक्त की। लेकिन वह अपनी पत्नी के तर्क से सहमत नहीं हुआ। उसने अपनी राय दी, 'बात तो तुम्हारी ठीक है, पर इन लोगों को काम मिलेगा कहाँ? एक तो वैसे ही आजकल कहीं काम नहीं है। बेरोजगारी सुरसा के मुँह की तरह बढ़ती जा रही है। यदि कहीं पर काम मिलता भी है तो जान-पहचान से ही। इनको कौन जानता-पहचानता है। ये किसी भी बाजार में किसी भी चौराहे पर जाकर खड़े हो जाएँ, किसी भी फैक्टरी-कारखाने में चले जाएँ, इन्हें कोई काम नहीं देगा। सब दुत्कार कर भगा देंगे।'

चन्द्रप्रकाश की पत्नी ने इस बार भी अपने पूर्व कथन का ही

समर्थन किया, 'ये लोग खुद भी कहाँ कमाना चाहते हैं। बिना कमाए इनका पेट भर जाता है तो फिर ये क्यों कमाएँ।'

लेकिन चन्द्रप्रकाश ने प्रतिकार किया। उसने कहा, 'तुम्हारा सोचना ठीक नहीं है पूनम! प्रत्येक व्यक्ति सम्मान के साथ जीना चाहता है। भीख माँगना किसी भी व्यक्ति के लिए अपमानजनक होता है। एक रुपया-आठ आने के लिए एक व्यक्ति दूसरे के सामने कितना गिड़गिड़ाता है और कितनी घृणा और दुत्कार सहता है। ज़िल्लत का यह काम विवशता में ही करना पड़ता है इन लोगों को। यदि इनको काम मिल जाए तो ये भीख बिल्कुल नहीं माँगेंगे और तब ये लोग इतनी भयंकर शीतलहर में बिना छत और कपड़ों के इस तरह फुटपाथ पर नहीं पड़े रहेंगे।'

सोसाइटी का गेट आ गया था। गाड़ी के साथ-साथ चन्द्रप्रकाश और उसकी पत्नी के बीच चल रहे संवाद में भी ब्रेक लग गया था। बेसमेन्ट में बने पार्किंग में अपने लिए निर्धारित स्थान पर गाड़ी खड़ी कर वे लोग दूसरी मंजिल पर स्थित अपने फ्लैट में गए। फ्लैट का दरवाजा एक बड़े कमरे में खुलता था जो ड्राईंग-कम-डाइनिंग-रूम के रूप में इस्तेमाल के लिए था। बाईं ओर एक छोटा-सा सर्वेन्ट रूम था और उसके साथ जुड़े लेट्रिन-बाथरुम। सर्वेन्ट रूम के ठीक साथ में स्टोर रूम था। ड्राईंग रूम पार करने के बाद आगे तीन बड़े-बड़े कमरे थे। सब कमरों के साथ अलग-अलग लेट्रिन-बाथरूम थे। साथ में एक अच्छी बड़ी रसोई थी। पूरी तरह धूप और हवादार प्रत्येक कमरे के साथ एक छोटी बालकोनी थी। खिड़की, दरवाजे, पुताई, पेन्ट, वुडवर्क सब काम हो चुका था। बिजली-पानी के कनेक्शन भी लगे हुए थे। फ्लैट पूरी तरह से रहने के लिए तैयार था, लेकिन खाली पड़ा रहने के कारण खिड़की-दरवाजों पर धूल की हल्की पर्त-सी जम गई थी। चारों ओर से बन्द रहने की वजह से फ्लैट में गन्दी हवा फैली हुई थी जो घुटन पैदा कर रही थी। चन्द्रप्रकाश ने गन्दी हवा बाहर निकालने के लिए सारे खिड़की-दरवाजे खोल दिए। गन्दी हवा के साथ-साथ एक कमरे में से दो कबूतर भी अपने पंख फड़फड़ाते हुए बाहर निकले।

फ्लैट का पूरी तरह एक मुआइना करने के बाद चन्द्रप्रकाश ने 'खिड़की-दरवाजों पर कितनी धूल जमी है' यह जानने के लिए अपनी एक

अँगुली एक खिड़की पर रगड़ी। ढेर सारी धूल उसकी अँगुली पर चिपक गई। अँगुली पर जमी धूल को अपनी पत्नी को दिखाते हुए वह बोला, 'देखो कितनी गन्दगी है। न रहने से मकान कितना बेतरतीब और गन्दा हो जाता है।'

उसकी पत्नी ने सहमति में सिर हिलाते हुए धीरे-से कहा, 'हाँ, सो तो है।' और फिर जैसे कुछ याद आया हो, क्षण भर विराम के बाद बोली, 'कहा तो है तुमसे कितनी ही बार कि इसे किराए पर उठा दो। दो पैसे की आमदनी भी होगी और फ्लैट भी साफ-शुद्ध रहेगा।'

'बात तो तुम्हारी ठीक है, पर दें किसको? कई लोगों को बोल चुका हूँ। सोसाइटी के सेक्रेटरी और चौकीदार से भी कहा है कि कोई किराएदार टकराए तो बताना, पर कोई किराएदार मिलता ही नहीं। अभी यहाँ अधिक डेवलप नहीं हुआ है न, इसलिए लोग अभी इधर आने में हिचक रहे हैं।' चन्द्रप्रकाश ने वस्तुस्थिति समझायी।

उसकी पत्नी खामोश हो गई थी। बराबर वाले ब्लॉक में एक फ्लैट में काम चल रहा था, वह बालकोनी में आकर उधर देखने लगी। चन्द्रप्रकाश भी बालकोनी में चला आया और वह भी उस ओर देखने लगा था। लेकिन सर्द हवा के प्रहारों ने अधिक समय तक उन्हें बालकोनी में खड़े नहीं रहने दिया और 'चलो पूनम, अन्दर चलो, बहुत खतरनाक हवा है' कहते हुए वह अपनी पत्नी के साथ बालकोनी छोड़कर कमरे के अन्दर आ गया और हवा से बचने के लिए दरवाजा बन्द कर दिया।

थोड़ी देर फ्लैट में बिताने के बाद वे लोग फ्लैट से बाहर आ गए। दरवाजा लॉक करते समय चन्द्रप्रकाश ने देखा कबूतरों का वह जोड़ा जो फ्लैट के अन्दर से उड़कर बाहर आ गया था, इस समय दरवाजे के ऊपर बनी छोटी-सी एक्जहॉस्ट खिड़की पर बैठा फ्लैट के अन्दर घुसने का प्रयास कर रहा था। उसने अपनी पत्नी का ध्यान उस ओर आकृष्ट किया, 'देखो, आदमियों के रहने के लिए घर नहीं हैं, और यहाँ इतने बड़े फ्लैट में कबूतर राज कर रहे हैं।'

उसकी पत्नी ने कबूतरों की ओर देखा और धीरे से 'हूँ...ऊँ...' कहकर सहमति में अपना सिर हिलाया।

बेघर लोगों का ध्यान आते ही चन्द्रप्रकाश का ध्यान अपनी सोसाइटी के पास खुले आसमान के नीचे रह रहे लोगों की ओर चला

गया। वह सोचने लगा, 'इतने सारे फ्लैट खाली पड़े हैं और इन लोगों के पास इस भयंकर शीत लहर में भी सिर छिपाने के लिए कोई ठिकाना नहीं है। यदि इनको भी सिर छिपाने के लिए कोई ठौर मिल जाए तो...।' उसका मन करुणा से भर उठा और उसके मन में यह विचार उभरा, 'ठण्ड से मरने वाले लोग ये ही तो होते होंगे जिनके पास इस ठण्ड से बचने का कोई उपाय नहीं है। यदि कुछ दिन के लिए लोग अपने फ्लैट इन लोगों को रहने के लिए दे दें तो क्या हो जाएगा? इससे कुछ लोग जरूर ठण्ड से मरने से बच सकेंगे। इस समय इन फ्लैटों में कबूतर रहते हैं, आदमी रह लेंगे तो क्या बुरा है?'

मस्तिष्क में इस विचार के आते ही वह अपनी पत्नी की ओर मुँह करके बोला, 'पूनम!'

'हूँ।' उसकी पत्नी ने उसकी ओर प्रश्नसूचक दृष्टि से देखा।

'हमारा फ्लैट खाली पड़ा है। इसमें कबूतर हगते-मूतते हैं और उधर सामने देखो।' कहते हुए उसने हाथ के संकेत से उसका ध्यान सोसाइटी से कुछ दूर सड़क के किनारे रह रहे लोगों की ओर आकृष्ट किया। 'ये बेघर लोग ठण्ड से मरे जा रहे हैं। यदि कुछ दिन के लिए हम अपने फ्लैट में इन लोगों को रहने दें तो क्या बुरा है।' उसने अपने मन की बात कही।

उसकी पत्नी ने विस्मय से उसकी ओर देखा और बेरुखे से स्वर में बोली, 'दे दो इन लोगों को रहने के लिए, लेकिन फिर भूल जाना इस फ्लैट को।'

'क्या मतलब?' वह अपनी पत्नी के शब्दों का आशय नहीं समझ पाया।

उसकी पत्नी ने खोलकर समझाया, 'एक बार फ्लैट में आने के बाद तुम इनको बाहर नहीं निकाल पाओगे। किराए पर भी किसी जान-पहचान वाले व्यक्ति को या उसके माध्यम से ही क्यों देना चाहते हो, इसीलिए न कि उससे फ्लैट खाली कराने में दिक्कत नहीं होगी। अनजान आदमी का क्या भरोसा है कि वह कैसा निकल जाए। जबरदस्ती तो किसी को निकालने से रहे।... और यदि निकल भी जाए तो फ्लैट का ऐसा सत्यानाश कर देंगे कि इसे रहने लायक नहीं छोड़ेंगे।'

चन्द्रप्रकाश अपनी पत्नी की बात से सहमत नहीं हुआ। उसने

अपना तर्क दिया, 'तुम जिनकी बात कर रही हो वे दूसरे लोग होते हैं। ये लोग इस तरह के नहीं हैं। इन बेचारों की क्या हैसियत है कि किसी का मकान खाली नहीं करें। बल्कि ये लोग तो इतना अहसान मानेंगे तुम्हारा कि तुम्हारे लिए कुछ भी करने को तैयार रहेंगे।'

'तुमको विश्वास है इन पर?' उसकी पत्नी ने उसकी आँखों में अपनी आँखें गड़ाते हुए पूछा।

'हाँ, मुझे विश्वास है।' शब्द ही नहीं उसकी बॉडी लेंग्वेज भी बता रही थी कि चन्द्रप्रकाश इस बात के प्रति पूरी तरह आश्वस्त था कि वे लोग ऐसा काम नहीं कर सकते।

उसकी पत्नी ने ज्यादा तर्क करना उचित नहीं समझा और यह कहकर अपनी बात को विराम दे दिया, 'तो फिर दे दो इनको रहने के लिए। लेकिन पहले सोसाइटी के पदाधिकारियों से पूछ लो, क्या वे लोग इसके लिए अॅलाऊ करेंगे।... ये लोग इतनी गन्दगी फैलाएँगे कि सारी सोसाइटी को गन्दा करके रख देंगे। सोसाइटी बिल्कुल अॅलाऊ नहीं करेगी इनको रहने के लिए।'

उसकी पत्नी की बात सही निकली। सोसाइटी के सेक्रेटरी से चन्द्रप्रकाश ने इस बारे में पूछा तो उसने यह कहकर स्पष्ट मना कर दिया, 'आप अच्छी तरह जानते हैं कि सोसाइटी के सदस्य एक खास जेन्टरी के लोग हैं। इन सड़क के लोगों की क्या जेन्टरी है? सोसाइटी का कोई सदस्य इनको बर्दाश्त नहीं करेगा। आपकी भावनाओं की हम कद्र करते हैं लेकिन हमें केवल आपकी नहीं, सोसाइटी के सारे सदस्यों की भावनाओं को देखना है। इसलिए इन लोगों को सोसाइटी के अन्दर रहने की इजाज़त नहीं दी जा सकती।'

सेक्रेटरी का यह जवाब चन्द्रप्रकाश को बहुत अमानवीय लगा था। उसके मन में आया कि सेक्रेटरी से यह कहे, 'मैं अपने फ्लैट में खुद रहूँ चाहे जिसको रहने को दूँ, तुम्हें क्या?' किन्तु वह जानता था कि सोसाइटी वाले अपने ढंग से ही चलेंगे और उसकी बात को तवज्जो नहीं देंगे। इसलिए उसने बहस करना उचित नहीं समझा और चुप लगा गया।

जिस समय घर लौटने के लिए चन्द्रप्रकाश सोसाइटी के गेट से बाहर निकला दिन के दो बज गए थे। लेकिन घनी धुन्ध छाई रहने के कारण सुबह से सूर्य के दर्शन नहीं हुए थे। इसने वातावरण को और सर्द

बना दिया था। वह सोसाइटी से फर्लांग भर आगे निकला होगा कि उसकी नजर रेड लाईट के पास सड़क के किनारे बैठे पाँच-छः बच्चों पर गई। बिना गर्म कपड़े पहने लगभग चार से दस साल तक की उम्र के ये सारे बच्चे एक फटी-पुरानी साड़ी ओढ़े बैठे थे। साड़ी को उन्होंने चारों ओर से ढाँपा हुआ था लेकिन उनकी टाँगें साड़ी के अन्दर नहीं समा पा रही थीं। वे बार-बार अपनी नंगी टाँगों को साड़ी के अन्दर समेटने की कोशिश कर रहे थे लेकिन सफल नहीं हो पा रहे थे।

संयोग से लाल बत्ती होने पर कार रुकी तो उसने देखा बच्चों की उदास आँखें आशा और उत्सुकता से उनकी ओर देख रही थीं। हरी बत्ती होने में अभी समय था, वह भी बच्चों की ओर देखने लगा। इन बच्चों को देखते-देखते उसे अपने दो वर्षीय बेटे का ख्याल आया और वह सोचने लगा, 'ठण्ड से बचने के लिए कितने सारे कपड़े पहनाते हैं हम उसे लेकिन फिर भी उसे कभी जुकाम, कभी खाँसी, कुछ न कुछ लगा रहता है, जबकि इन बच्चों के पास तो...। इतनी भयंकर सर्दी का मुकाबला कैसे करेंगे ये बच्चे?' उसे लगा बच्चे उससे मदद माँग रहे हैं। उसका मन हुआ कि इन बच्चों की कुछ मदद करे। उसने बच्चों को सौ रुपये देने चाहे और पर्स निकालने के लिए हाथ कोट की जेब में डाला लेकिन फिर यह सोचकर रुक गया 'सौ रुपये देने से भी इनका क्या भला होगा। सौ रुपए इनको सर्दी से नहीं बचा सकते। फिर इनकी मदद करूँ तो कैसे?'

उसे अपनी विवशता पर क्षोभ हुआ। अपना क्षोभ उसने सोसाइटी के पदाधिकारियों पर उतारा 'यदि सोसाइटी वाले ॲलाऊ कर दें तो इसमें क्या हर्ज है। कम से कम शीत लहर के कुछ दिन तो ये लोग वहाँ बिता सकते हैं।'

बत्ती हरी हो गई थी। चन्द्रप्रकाश ने अपनी गाड़ी स्टार्ट की और एक्सिलेटर पर पैर रखते हुए बच्चों की ओर देखा। उम्मीद में चमकती उनकी आँखें अभी भी उसकी ओर टिकी थीं। गाड़ी आगे बढ़ाते हुए उसने खिड़की का शीशा नीचा कर बच्चों की ओर हाथ उठाकर धीरे-से बॉय-बॉय किया। बच्चों ने उत्साह और उमंग से एक-दूसरे की ओर देखा। उनकी आँखों में खुशी की रेखाएँ चमक उठी थीं। उसने गौर से बच्चों की ओर देखा और सोचा, 'केवल एक बॉय-बॉय करने से कैसे इन बच्चों के चेहरे खुशी से खिल उठते हैं। एक बार फिर उसने हाथ के साथ सिर हिलाकर उनको बॉय-बॉय किया और एक्सिलेटर पर पैर का दबाव बढ़ा

दिया। गाड़ी रेड लाइट पार करके आगे निकल आई थी लेकिन चन्द्रप्रकाश ने शीशे में से देखा, शीत लहर के कारण बच्चे अपने हाथ साड़ी में से बाहर नहीं निकाल रहे थे लेकिन उनकी आँखें अभी भी उनका पीछा कर रही थीं। शीत लहर से बचने के उपक्रम में वे एक-दूसरे के भीतर को घुसे जा रहे थे। उसे भी अपने अन्दर से शीत लहर गुजरती महसूस हुई।

कठिन शब्दार्थ :

आवास = निवास; राहत = सुख, आनंद; अलाव = जाड़े में तापने के लिए लगाई हुई आग; विवशता = लाचारी, मजबूरी; ज़िल्लत = अनादर, अपमान; तवज्जो देना = ध्यान देना; क्षोभ = दु:ख; सुरसा = एक राक्षसी का नाम।

I) एक शब्द या वाक्यांश या वाक्य में उत्तर लिखिए :

१) चंद्रप्रकाश का फ्लैट कहाँ था?
२) सोसाइटी सभी फ्लैट मालिकों से प्रतिमाह रख-रखाव का कितना खर्च लेती थी?
३) लक्ष्मीबाई नगर से द्वारका तक के रास्ते में लेखक किन्हें देखते हैं?
४) चंद्रप्रकाश की पत्नी का नाम क्या है?
५) चंद्रप्रकाश के अनुसार प्रत्येक व्यक्ति कैसे जीना चाहता है?
६) भीख माँगना किसी भी व्यक्ति के लिए क्या है?
७) दरवाजा लॉक करते समय चन्द्रप्रकाश ने किसका जोड़ा देखा?
८) चंद्रप्रकाश की ओर बच्चे किस नज़र से देख रहे थे?
९) चंद्रप्रकाश ने बच्चों को कितने रुपये देने चाहे?

II) निम्नलिखित प्रश्नों के उत्तर लिखिए :

१) चंद्रप्रकाश सोसाइटी के फ्लैट में क्यों नहीं रहते थे?
२) दिल्ली में शीत लहर के प्रकोप का वर्णन कीजिए।
३) 'क्या जिन्दगी है इन लोगों की...।' चंद्रप्रकाश के इस उद्‌गार पर टिप्पणी कीजिए।
४) चंद्रप्रकाश अपने फ्लैट में बेघर लोगों को क्यों नहीं रख पाया?
५) चंद्रप्रकाश का चरित्र-चित्रण कीजिए।
६) चंद्रप्रकाश को अपनी विवशता पर क्यों क्षोभ हुआ?

* * * * * *

५. सिलिया

– डॉ.सुशीला टाकभौरे

लेखिका परिचय :

सुशीला टाकभौरे जी का जन्म ४ मार्च १९५४ ई. में गाँव बानापुर, होशंगाबाद, मध्यप्रदेश में हुआ। आपकी माता पन्नाबाई तथा पिता रामप्रसाद घावरी थे। आपने माता की प्रेरणा तथा अपने अथक परिश्रम के बल पर नए कीर्तिमान स्थापित किए। आपकी कहानियाँ यथार्थ परक हैं। 'टूटता वहम', 'अनुभूति के घेरे', 'संघर्ष' (कहानी संग्रह), 'स्वाती बूँद और खारे मोती', 'यह तुम भी जानो', 'तुमने उसे कब पहचाना', 'हमारे हिस्से का सूरज' (काव्य संग्रह), तथा 'रंग और व्यंग्य', 'नंगा सत्य' (नाटक) हैं। अनेक विश्वविद्यालयों में आपके साहित्य पर शोधकार्य चल रहा है। आपको अनेक संस्थाओं से सम्मानित किया गया है। वर्तमान में आप सेठ केसरीमल पोरवाल कॉलेज, कामठी (नागपुर), महाराष्ट्र में सेवारत हैं।

''जहाँ चाह होती है, वहाँ राह खुद बनने लगती है।'' इसको चरितार्थ करते हुए कहानी की प्रमुख पात्र सिलिया समाज में अपने लिए न सिर्फ स्थान बनाती है बल्कि सम्मान की अधिकारिणी भी बनती है। वह अपने साथ घटी हुई घटनाओं को ध्यान में रख, 'झाड़ू' के स्थान पर 'कलम' को महत्व देकर अपने लक्ष्य को प्राप्त कर अपनी जाति के लिए ही नहीं अपितु पूरे समाज के लिए प्रेरणास्त्रोत बन जाती है।

स्त्री शिक्षा के महत्व को प्रतिपादित करने तथा अपने दृढ़ संकल्प को साकार करने की प्रेरणा लेने हेतु इस कहानी का चयन किया गया है।